International Journal of Sanskrit Research 2017; 3(6): 76-77

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2017; 3(6): 76-77
© 2017 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 17-09-2017
Accepted: 19-10-2017

Dr. Manju singh
Principal, Jagraut Women College, kherla bujurg affiliated to Rajasthan University Jaipur, Rajasthan, India

Correspondence
Dr. Manju singh
Principal, Jagraut Women College, kherla bujurg affiliated to Rajasthan University Jaipur, Rajasthan, India

वेदों में यज्ञ एवं वर्तमान में उपादेयता

Dr. Manju Singh

प्रस्तावना

वैदिक काल से ही सामाजिक सुख–सुवधिा की अभिवृद्धि और राष्ट्र–कल्याण के निमित्त विभिन्न यज्ञादि अनुष्ठान सम्पादित किये जाते हैं। इस प्रकार व्यक्तिगत सुख की प्राप्ति के लिए देवताओं से पशु, पुत्र, गृह, धन–धान्य और आरोग्य जीवन की याचना यज्ञ के माध्यम से की जाती थी। वेदों का मुख्य प्रतिपाद्य विषय यज्ञ हैं। 'अग्नि सोमात्मकं जगतः' मंत्र के द्वारा यज्ञ के स्वरूप को बताते हुए कहा गया है, कि अग्नि में घृतादि सोमप्रधान द्रव्यों की आहुति देना यज्ञ कहलाता है।

वैदिक यज्ञों में 'आनानीय, गार्हपत्य एवं दक्षिणाग्नि' नामक तीन अग्नियाँ प्रज्वलित की जाती थी।[1] ऋग्वेद में यह भी आया है कि – मनुष्य तीन स्थानों पर अग्नि प्रज्वलित करते थे।[2] ऋग्वेद में तीन सवनों का वर्णन भी हुआ है यथा प्रातः सवन, माध्यन्दिनस सवन एवं तृतीय सवन।[3] यज्ञ के तीन अर्थ हैं – पूजा, संगतिकरण और दान। 'यत् देवता अकुर्वन् तत् करवाणि'[4] अर्थात् जो देवों ने किया वह मैं करूँ, इस कामना से देवत्व अर्थात् श्रेष्ठ गुणों की अभिवृद्धि हेतु कामना करता हुआस देवार्चना नामक यज्ञ का विधान करता है। 'यजीवान् ऊर्ध्वः प्रतिष्ठति'[5] अर्थात् यज्ञ करने वाला सदा उन्नत शिखा में रहता है। तात्पर्य उसके आत्मतेज में निरन्तर अभिवृद्धि होती रहती है। 'स ज्योतिषा ज्योति'[6] मंत्र द्वारा महर्षि बताते हैं कि तेज से तेज की अभिवृद्धि होती है। यह भी यज्ञ ही है।

यजुर्वेद के प्रथम मत्र में ''श्रेष्ठतमाय कर्मणेः'' के द्वारा यज्ञ को परमात्मा ने सबसे श्रेष्ठ बताया है। यही व्याख्या शतपथ ब्राह्मण में याज्ञवल्क्य ने की है – 'यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म'। सामवेद के प्रथम मंत्र में भी अग्नि–परमात्मा और यज्ञ की अग्नि का आनान करके द्रव्यदान का वर्णन मिलता है यथा।

अग्न आयादि वीतये, गृणानो हव्यदातये।
नि होता सत्सि बर्हिषि।।'

यज्ञ के अनेक प्रकार थे, जिनमें प्रमुख गृहस्थाश्रम में किए जाने वाले चौदह श्रौत, यज्ञ, सात गृह्य यज्ञ और सोलह संस्कारों के समय किये जाने वाले यज्ञों के साथ–साथस प४च महायज्ञ यथा ब्रह्म यज्ञ, पितृ यज्ञ, देव यज्ञ, भूत यज्ञ और मनुष्य यज्ञ आदि थे।

अथर्ववेद के प्रथम मंत्र में 21 प्रकार के यज्ञों का वर्णन मिलता है। यथा –

ये ग षिप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः।
वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वो अद्य दधातु मे।।

अर्थात् जो 3×7 = 21 यज्ञ अनेक रूपों को धारण किए हुए, सर्वत्र व्याप्त है, उनके बल को वेदवाणी का पालक स्वामी परमात्मा मुझे सदा धारण कराये। गोपथ ब्राह्मण में भी 21 यज्ञों के नामों (7 पाक यज्ञ, 7 हविर्यज्ञ और 7 सोम याग) का उल्लेख किया गया है। इनके अलावा एकाह, द्वाद्वशा, एक वर्ष चलने वाले और हजार वर्ष चलने वाले भी यज्ञों का वर्णन है। इनके अतिरिक्त दर्शेष्टि, पौर्णमास, वाजपेय, राजसूय, अश्वमेध, पुरूषमेध और सौत्रामणि आदि यज्ञों का उल्लेख भी मिलता है।

इन यज्ञों के द्वारा प्रत्येक याज्ञिक का सम्पूर्ण विश्वस के साथ सम्बन्धव बना रहता था। इस प्रकार यज्ञ के माध्यम से विश्व में अन्न बाँटकर, वह स्वयं यज्ञ शेष का भोजन करता है। इस यज्ञ पद्धति द्वारा विश्व के साथ कौटुम्बिक सम्बन्ध बनाये रखने का यह दृष्टान्त वैदिक काल का एक दिव्य उपहार है। इसीलिए समस्त विश्व को एक परिवार मानकर उसके कल्याणार्थ किये गयेय यज्ञादि कर्मों का अनुष्ठान मानवीय कार्यों में सर्वोत्तम कार्य कहा गया है। दूसरे शब्दों में, अपनी वस्तु को सबकी भलाई के लिए समर्पण करने का नाम ही यज्ञ है।

इसी समर्पण द्वारा प्रतयेक प्राणी में त्याग भावना की अभिवृद्धि होती है, राष्ट्र की उन्नति होती है तथा निर्बल बलवान बनते हैं। यथा – 'बृहतः क्रतोः भद्रस्य दक्षस्य'[7]।

यज्ञ एवं उसकी उपादेयता

यज्ञानुष्ठान का मानवीय जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध है। यह मनुष्य की समस्त दुर्बलताओं को विनष्ट कर उसे सबल और प्रगतिमान बनाता है। 'अ तमेरूः यज्ञः'[8] इस यंत्र में बताया गया है, कि यज्ञ सुदृढ़ता प्रदान करने वाला है, तथा आत्मबल की अभिवृद्धि करने वाला है। यज्ञ मानव की शिथिलता का विनाश करता है, उसमें स्फूर्ति का संचार करता है तथा शत्रु पर आधिपत्य स्थापित करने की बौद्धिक और शारीरिक शक्ति का विकास करता। इस विधि द्वारा उसमें जन–कल्याण और पर–हित के निमित्त आत्म–समर्पण की भावना का विकास होता हैं। मानवीय गुणों की परिशुद्धि के लिए प्रथम यज्ञ शाला उसका स्वयं का घर है। जहाँ पति–पत्नि सामर्थ्यानुसारस आत्म–त्याग करते हैं तो माता–पिता अपने बच्चों के हित संरक्षण को तथा बच्चे माता–पिता के सुख–साधनों को ध्यान में रखते हुए पितरों के लिए आत्म समर्पण द्वारा यज्ञादि सम्पादित करते हैं। जिससे पारिवारिक सदस्यों में सहयोग और त्याग की भावना का विकास होता है। त्याग भावना का यही क्रम हमें सम्पूर्णय मानव समाज में दृष्टिगोचर होता है।

इसके अतिरिक्त यज्ञ से समस्त सृष्टि का, मानव का हित लक्षित होता है। यज्ञ के द्वारा वातावरण में आर्द्रता का शमन होता है, जिसका शरीरों पर स्वस्थ प्रभाव पड़ता है। कमरे में यज्ञ करने से वही प्रभाव होता है जो Air Conditioner का होता है।

यज्ञों के माध्यम से खनिज सम्पदा में वृद्धि होती है। पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्युलोक के पादार्थों का सूक्ष्म एवं बीजात्मक अंश विविध वनस्पतियों में होता है। यज्ञ के माध्यम से वह अंश वनस्पतियों से निकलकर धुऐं के साथ यत्र–तत्र प्रसारित करके उस सम्पदा को अधिक पुष्ट किया जा सकता है। यज्ञ द्वारा पर्यावरण अनुरक्ष्ज्ञण होता है। यज्ञ द्वारा न केवल फलस प्रचुर और सुस्वादु होती है, वरन विश्व का वानस्पतिक अनुपात भी कायम रहता है। इसका उल्लेख यजुर्वेद के इस मंत्र में भी मिलता है।[9]

ऊर्ज्जं वहन्तीरमृतं घृतं पयः कीलालं परिस्त्रुतम्।
स्वधा स्थ तर्पयत में पितृन्।।

यज्ञ में ठोस पदार्थों में सर्वश्रेष्ठ वनस्पतियाँ और द्रव्य पदार्थों में अमृत घृत अग्नि में जलाया जाता है। उससे कुछ गैसें निकलती हैं। इनसे विभिन्न रागों में यथा–वात–वित्त–कफ आदि में आश्चर्यजनक लाभ होता है। यज्ञ से वर्षा होती है तथा यह उत्तम एवं विविध गुणों से युक्त वृष्टि जल निर्माण होने से वह जल कृषि उत्पादन में गुणात्मक व संख्यात्मक दोनों प्रकार की वृद्धि करता है। यजुर्वेद में एक स्थल में यज्ञ वायु व सूर्य द्वारा वृष्टि की वृद्धि को दर्शाता हैं।[10]

इसी प्रकार याज्ञिक प्रक्रिया के विधि पूर्वक सम्पादन से समस्त वायु मण्डल में व्याप्त प्रदूषण का परिशोधन होता है तथा उसमें निहित धार्मिक भावना के द्वारा पूर्व सञ्चित नैसर्गिक गुणों का परिशीलन मानव को सु–सभ्य और सु–संस्कृत बनाते हुए, समाजोचित व्यवहारिक कुशलता प्रदान करता है। अतः 'यज्ञ' शब्द अपने आप में व्यापकार्थ लिए हुए है। अग्नि प्रज्वलित कर उसमें हव्यादि सोम प्रदार्थों की आहुति देना तो केवल मात्र यज्ञ का एक स्थूल व बाह्य रूप है, जबकि उसमें निहित धार्मिक भावनास उसका सूक्ष्म अर्थ है। यथा –

भूतभावोद्भवकारों विसर्गः कर्मसंजितः

अर्थात् वेदों के मार्ग का अनुसरण कर स्वयं को श्रेष्ठ बनाना सामाजिक संगठन को सु–दृढ़ता प्रदान करते हुए राष्ट्र उत्थान करना तथा दान देकर राष्ट्र की प्रजा को सुखी बनाना आदि वैदिक मन्त्र द्वारा महर्षियों ने प्राणि–मात्र में उत्पत्ति और सत्ता बनाये रखने वाले कार्य को यज्ञ कहा है।

निष्कर्षत

यही कहा जा सकता है कि यज्ञ हमारे वैयक्तिक आत्मोद्धार के साथ–साथ परिवार, समाज, राष्ट्र और विश्व का भी कल्याण करते हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों से इस विश्व–जनीय हित के लिए यज्ञ का परिणाम और उसका वैज्ञानिक क्रम बताते हुए कहा है – अग्नि से यज्ञ करने पर जो धुआँ उत्पन्न होता है, वह वायु द्वारा अन्तरिक्ष में जाकर वहीं मेघ बन जाता है, जिससे वृष्टि होती है और अन्नादि उत्पन्न होते हैं। (ऐतरेय ब्राह्मण 2/41) इस प्रकार वैदिक वाग्मय में वैज्ञानिक दृष्टि से यज्ञ का महत्त्व, सूक्ष्म, संतुलित और स्वानुभूत दृष्टि से विश्व कल्याणकारी रूप में बताया गया है।

सन्दर्भ

1. ऋग्वेद (1/15/12)
2. ऋग्वेद (1/15/4 एवं 5/2/2)
3. ऋग्वेद 3/28/1, 3/28/5 (सवन से तात्पर्य सोम रस से है)
4. शतपथ ब्राह्मण
5. ऋग्वेद 4/6/87
6. गोपथ ब्राह्मण (पूर्वार्द्ध 5/23)
7. ऋग्वेद 4/10/2
8. शुक्ल यजुर्वेद 1/23
9. यजुर्जेद 2/34
10. यजुर्वेद 1/16